भूमिका-

भारत के किसी भी जनजातियों के जन-जीवन के लोक रहस्य संस्कृति को समझने के लिए उस जनजातीय समाज के रीति-रिवाज, परम्परा, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा, मान्यताएँ, विचार-भाव, विश्वास एवं कलात्मक अभिव्यक्ति को गहराई रूप से जानना आवश्यक होगा। इस प्रकार से भारत के विभिन्न भागों में रहने वाली जनजातियों के लोक संस्कृति/लोक परंपराओं का संकलन विभिन्न मानवजाति वर्णन कर्ताओं द्वारा किया गया है। मध्य-प्रदेश में वेंकटास्वामी (1899-1903) तथा ई. एम. गर्डन (1908) के द्वारा लोक साहित्य अनुसंधान शुरू किया गया। डॉ. वेरियर एल्विन (1949) ने गोंड, प्रधान, बैगा, मुरिया, ओझा, सवरा जनजाति के लोक साहित्यों का संकलन तथा प्रकाशन किया। इन्होनें मध्य-प्रदेश, उड़ीसा, बिहार एवं राजस्थान की पौराणिक कथाओं का विवरण प्रस्तुत किया। डॉ. एल्विन के अतिरिक्त ग्रिफिथ (1944), आर्चर (1943), एस. सी. दुबे (1947), देवेन्द्र सत्यार्थी (1951), श्याम परमार (1954), एस. सी. जैन (1965), अमृत लाल दुबे (1963), शेख गुलाब (1964), स्टीफेल फञ्च्स (1960) आदि के द्वारा मध्य-प्रदेश से लोक साहित्यों का संकलन एवं प्रकाशन किया गया है। रामदयाल मुंडा तथा नार्मन जीदे (1969) ने बिरसा आंदोलन से संबंधित लोक गीतों का संकलन किया। विद्यार्थी (1963) ने भी इसी तरह अपना योगदान दिया। देवेंद्र सत्यार्थी द्वारा (1952-53) गद्दी लोक गीतों का संकलन किया गया। केदारनाथ (1958) के द्वारा थारु के लोक गीत का संकलन किया गया। शाह के द्वारा (1969) गुजरात के आदिवासी लोक गीतों का संकलन किया गया। इसी प्रकार से असम तथा नागालैंड के लोक गीतों का अध्ययन हट्टन, मिल्स, गार्डन, शेक्सपियर्स जैसे एथनोग्राफर द्वारा किया गया। इसके अलावा भी कई विद्वानों ने लोक संस्कृति की रहस्य को संकलन किया है।

लेकिन अभी भी लोक संस्कृति/लोक परंपराओं को विस्तारपूर्वक एवं गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। कुछ लोक संस्कृति अस्तित्वहीन हो गई है तथा अनेक लोक संस्कृति अस्तित्वहीनता के कगार पर पहुँच गई है। भारतीय जनजातीय कला में लोक

परंपराओं के विभिन्न गतिविधियों का समावेश देखने को मिलता है। मानवशास्त्रीय व्यवहार में 'लोक' शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थों में किया गया है- लोक कथा, लोक गीत, पौराणिक कथा, राजा-रानी की कथा कहावतें, हंसी-मज़ाक तथा उच्चारण द्वारा अन्य प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया गया है *(उपाध्याय, 2009 एवं पाण्डेय, 2007)।*

'फोक' लोक शब्द की उत्पत्ति एंग्लो सेक्सन 'फोल्क' (folc) शब्द से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे वोल्क (volk) कहते हैं। 'फोल्क' शब्द से ही 'फोकलोर' शब्द बना है। 'लोक संस्कृति' शब्द का विकास अंग्रेजी शब्द के 'फोकलोर' से माना जाता है। 'फोकलोर' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- फोक और लोर 'फोक' शब्द को जर्मन भाषा में वोल्क (volk) कहते हैं। डॉ. बार्कर महोदय ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' शब्द का अर्थ असंस्कृत लोग हैं। अंग्रेजी 'फोक' के लिए इसी अर्थ में हिन्दी में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। दूसरा शब्द 'लोर' (lore) है जो ऐंग्लो सेक्सन 'लर' शब्द से निकला हुआ है। 'लोर' शब्द का अर्थ है 'नॉलेज' ज्ञान होता है। अतः फोकलोर का अर्थ हुआ सामान्य जनता का ज्ञान अथवा विद्या। लोकप्रिय संस्कृति के अध्ययन की पहले-पहल परंपरा युरोपीय बौद्धिकों ने प्रारंभ किया। जे. सी. हर्डर ने 1774 ई. में फोक स्लाईड (volk slide) अर्थात फोक सांग, जिसे हिन्दी में लोक गीत कहते हैं, का प्रचलन किया। उसके बाद लोक कथाओं के अर्थ में फोक सांग से फोक साज़ शब्द का जन्म हुआ। जोसेफ गोरेस नामक पत्रकार ने प्रारंभ में फोक बक (volk sbuch) शब्द इसके लिए प्रचलित किया। अंग्रेजी में फोक लोर शब्द का प्रचलन सन 1846 में हुआ। इसी तरह 1850 ई. में फोक सपिल शब्द का प्रचलन हुआ *(विश्वमंगल, 2014)*।

सन 1846 में सर्वश्री डब्ल्यू.जे. थॉमस के द्वारा 'फोकलोर' शब्द को प्रयोग में लाया गया था। थॉमस महोदय ने फोकलोर शब्द की व्याख्या करते हुए इसे सर्वसाधारण जनता का ज्ञान (The lore of the people) बतलाया है। यह अंग्रेजी के शब्द की उत्पत्ति जर्मन शब्द 'वोकलहरे' लोक-रिवाज से हुई है। श्री घनश्याम गुप्त ने इस शब्द की भारतीय संदर्भों में

अकादमीय स्वीकृति की विवेचना भी की। लोक तात्विक अनुभूतियाँ होती है जो लोक तत्वों से रूबरू होता है। प्रदेश या एक क्षेत्र के अपने-अपने विश्वास, धारणाएँ, मान्यताएँ, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, विचार-भाव, रहन-सहन के तरीके खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा आदि के ढंग होते हैं, यही लोक संस्कृति कहलाती है। 'लोक' अपने आप को अभिव्यक्त करने के लिए जिन तत्वों का प्रयोग करता है, उन्हें 'लोक तत्व' कहते हैं। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार- लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं।

जॉन मिश के अनुसार- फोकलोर के अंतर्गत हमारे समस्त प्राचीन लोकप्रिय विश्वासों, प्रथाओं और परंपराओं का समावेश होता है। विलियम बास्कम के द्वारा- फोकलोर का संबंध पुराण-गाथा, लोक कथा, लोकोक्ति, पहेली आदि विषयों से है जिसका माध्यम मौखिक शब्द है। मानवशास्त्रियों के अनुसार- फोकलोर का अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत प्रथाएँ, अंधविश्वास, कला-शिल्प, वेश-भूषा, गृह के प्रकार और भोजन की सामग्री आदि से है।

आर. डी. जेमसन के अनुसार- फोकलोर सांस्कृतिक परिदृश्य में परंपरा लोक कथाएँ, अंधविश्वास धार्मिक विधि-विधान, प्रथाएँ, नृत्य तथा प्रकृति और मानव की विशेषताएँ आतीं हैं परंतु आधुनिक वैज्ञानिक फोकलोरिस्ट ताराओं की कथा, टोटेजिस्म (टोटेमवाद) और विस्तारवाद के अध्ययन में लगे रहते हैं।

एरेलियो एसिप्नोजा के द्वारा- फोकलोर की सामग्री अधिकांश रूप से सामाजिक मानव विज्ञान (Social Anthropology) की सामग्री के समान है। विशिष्ट रूप से फोकलोर के अंतर्गत लोक विश्वास, प्रथाएँ, अंधविश्वास, पहेलियाँ, गीत, पुराणकथा, लोककथा, धार्मिक संस्कार, जादू, डायन-विद्या तथा आदिवासियों एवं अशिक्षित लोगों के क्रिया-कलाप आते हैं।

जॉर्ज फास्टर के अनुसार- फोकलोर के अध्ययन का क्षेत्र पहेलियों, गीतों, लोकविश्वास, तथा विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों तक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त बच्चों के खेल, पालने के गीत, संस्कार विविध विधि-विधान तथा जादू एवं डायन भी इसके अंतर्गत आता है। जेर ट्रड

कुरथ के अनुसार- "फोकलोर वह विज्ञान है जिसमें पारंपरिक लोक विश्वास, लोक कथा, अंधविश्वास, संस्कार, प्रथा, खेल, गीत तथा नृत्य का वर्णन किया गया है।"

इस प्रकार से जो अशिक्षित जनता के बीच आज भी अवशेष रूप में सुरक्षित है। इसके साथ ही फोकलोर का क्षेत्र परी कथाओं, पुराण कथाओं, अंधविश्वासी, व्रतों, विधि-विधानों, परंपरागत खेलों, लोक गीतों जनप्रिय कला-शिल्प लोक नृत्य तथा अन्य ऐसी वस्तुओं तक विस्तृत है। जॉन मिश के अनुसार- फोकलोर के क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। मानव जीवन के समस्त क्रिया-कलापों को इन्होनें फोकलोर के अंतर्गत स्वीकार किया है। लोक गीत तथा लोक शिल्प भी इसके अंतर्गत आता है। लोक विश्वास, उत्सव संस्कार तथा जीवन के अन्य गतिविधियों का समावेश भी इसके भीतर मौजूद रहता है *(उपाध्याय, 2009 एवं देशवाल, 2004)*।

व्यवहार मात्र के जितने भी पथ व्यवस्थित है, निरंतर चले आ रहे हैं और लोक में मान्यता प्राप्त है, वे स्वीकार्य है, वहाँ तर्क के आधार पर खंडन नहीं किया जा सकता है। यह लोक परंपरा की सटीक परिभाषा है। परंपरा निरंतरता है, व्यवस्था है और लोक-स्वीकृति है। इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें परिवर्तन नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि व्यवस्था, दूसरी व्यवस्था से विस्थापित होकर, नई व्यवस्था बनती रहती है। निरंतरता का अर्थ है कि पहले के अर्थ नए-नए अर्थों में समाते और उसे पूर्ण बनाते जाते हैं। लोक-स्वीकृति का अर्थ है कि लोक के दिनोदिन व्यवहार में आकर वे जीवित होते रहते हैं *(विश्वमंगल, 2014)*।

परंपरा शब्द एक ऐसा शब्द है, जिसे मनुष्य अपने बोलचाल में कई बार प्रयोग करता है या जब किसी खास व्यवहार आचरण की बात की जाती है तब परंपरा का समावेश होता है। आखिर परंपरा क्या चीज है ? मनुष्य के आरंभिक विकास में ही आचरण के कुछ ऐसे नियमों की सर्जना हुई, जिन्होनें परंपरा का रूपधारण कर लिया। प्रारंभ में सामूहिक जीवन के कुछ नियम बनें और यही नियम इतने प्रीतिकर हो गए कि एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक उसे अपनाने लगी। यही अपरिहार्य और जीवन को स्फूर्त करने वाले नियम 'परंपरा' कहलाई।

मनुष्य ने अपने विकास क्रम के साथ यदि सबसे अधिक किसी चीज की सर्जना की है तो वे परम्पराएँ हैं। प्रत्येक समाज, देश में परंपराओं का अक्षुण्ड्य भंडार देखा जा सकता है। परम्पराएँ सामूहिक अनुभव की देन है जिसमें पीढ़ियों का ज्ञानानुभव समाहित होता है। परम्पराएँ सुंदर, सुदृण और मर्यादित जीवन के लिए हर समय और हर परिस्थिति में खरी होती है, इसलिए पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी को इन परंपराओं को अपनाने में कोई कठिनाई नही होती। बल्कि यह कहना उचित होगा कि नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से परंपराओं को अपनाने में गर्व का अनुभव करती है।

परंपरा की परिधि स्थितियों और संदर्भों के अनुसार फैलती और सिकुड़ती रहती है। बदलते परिवेश में और नई आवश्यकताओं के दबाव के कारण परम्पराएँ अपना अनुकूल करती है। परंपरा पहले मनुष्य को संस्कार देती है, फिर वह सामूहिक स्वीकृति से संस्कृति का आभिजात्य अंग बन जाता है। परंपराओं का धारा बहुत व्यापक होता है। पुरानी परम्पराएँ वर्तमान में भी जीवित रहती हैं और वर्तमान के लोक व्यवहार, नवाचार धीरे-धीरे परंपरा का रूप धारण कर लेते हैं। पुरानी परंपरा प्रांसगितता के अभाव में छूटती चली जाती है। कौन सी परंपरा स्वीकार करना है और कौन सी परंपरा छोड़ना है, इसका निर्णय समाज की सामूहिक स्वीकृति करती है। यह प्रक्रिया सांस की तरह हर काल में निरंतर चलती रहती है। परंपरा मन, वचन और कर्म के माध्यम से प्रायः अभिव्यक्त होती है। यह जरूरी नहीं है कि परंपरा का शब्दों में वर्णन किया जाए। वह क्रिया-कलाप बैठने-उठने, बोलने-चालने, में भी व्यक्त होती है। लोक व्यवहार, लोक रीति, अनुष्ठान रक्त की शुद्धता, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, जैसे मनोविकारों में भी परंपरा को बचाए जाने की कट्टरता की भावना को देखा जा सकता है। अनेक रीति-रिवाज और प्रथाएँ परंपराओं में समाहित होते है। परंपरा की पहली शर्त लोक विश्वास है और परम्पराएँ अच्छी-बुरी हो सकती है। रीति-रिवाज भी खोखले हो सकते हैं, लेकिन परंपरा की धारा सदैव बहती रहती है। पुरानी परंपरा की जगह नई परंपरा स्थान लेती चलती है। जो एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक हस्तांतरित होती चली जाती है।

संस्कृत शब्दकोश में परंपरा का अर्थ श्रृंखला, नियमित सिलसिला आदि बताया गया है तो वृहद् हिंदी कोश में इसका अर्थ है - अटूट सिलसिला, प्रथा, प्रणाली जो बहुत दिनों से चली आ रही है आदि । परंपरा के शाब्दिक अर्थ को देखकर कहा जाता है कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिए जाने वाले सब विश्वाश, विचार, व्यवहार-प्रकार, प्रथाएँ, जीवन मूल्य और सांस्थानिक रूप परंपरा की परिधि में परिणित किए जाते हैं । ये तत्व हमें संस्कृति और सभ्यता में भी दिखाई देते हैं । मानवविज्ञान और समाजविज्ञान में परंपराओं के तीन प्रकार निश्चित किए हैं- मिथक, लोक रीतियाँ और लोक नीतियों की रीतियाँ, जो मिथक प्रतीकात्मक होते है । इनमें जीवन दर्शन, प्रेरणा एवं व्यवहार कौशल के तत्व घुले-मिले रहते हैं । लोक रीतियों से सामाजिक व्यवहार के मानक निर्धारित होते हैं । इनसे व्यवहार का प्रवर्तन अनौपचारिक ढंगों से किया जाता है । इनको समाज की व्यापक स्वीकृति मिली होती है जिसका सामानतः उलंघन नहीं किया जाता है । दूसरी तरफ लोक नीतियाँ व्यवहार के नैतिक मानकों का निर्धारण करती है । समाज में इनका प्रवर्तन कठोरता से होता है, फलतः इन्हें नकारने का विकल्प नहीं होता । लोक परम्परा में विश्वाश, मान्यताएं , धारणाएं अर्थात मिथकीय तत्वों को शामिल करते हैं । लोक परंपराओं में अक्सर व्यावहारिक रूप से लोकगीत, लघुकथा तथा मौखिक रूप से प्रचलित मान्यताएं हैं, जो अतीत के स्वरुप को वर्तमान में प्रकट करता है और यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है । लोक संस्कृति को ग्रामीण अंचलों में आज भी देखा जा सकता है । गोबर से पुताई कर विभिन्न प्रकार के आकार देते हुए अपने आँगन में रंगोली डालते हैं । आज भी (मुख्यतः दक्षिण भारतीय घरों) के दरवाज़े पर आम तौर पर बनी हुई देखी जा सकती । इसके अलावा बीज न बोने के पहले बिदरी बनवाना तथा नवाखाई परम्परा आदि को देखा जा सकता है ।

रॉबर्ट रेड्फिल्ड और मिल्टन सिंगर ने लघु और वृहद् परंपराओं और उनके अंतरावलंबन की बात की है । जिसे शास्त्रीय और लौकिक परंपरा के नाम से जाना जाता है । वृहद् परंपरा की तत्व हम शास्त्रों में खोजते हैं और उसका एक आदर्श प्रतिरूप निर्मित करते हैं ।

इस संबंध में प्रश्न उठता है कि प्राचीन समय में या आज कितने समूह इस परंपरा के जीवित प्रतिनिधि थे ? अनेक लौकिक परम्पराएँ थीं। जातीय, स्थानीय और क्षेत्रीय। स्थानीय परम्पराएँ क्षेत्रीय परंपराओं से सावयवी रूप से जुड़ी थीं। क्षेत्रीय संस्कृतियों का अपना सबल व्यक्तित्व था। इन संस्कृतियों ने अपने-अपने तरीकों से शास्त्रीय परंपराओं से संपर्क सूत्र बनाए। लौकिक परम्पराएँ हमेशा ज्यादा ताकतवर रहीं। शास्त्रीय और लौकिक परंपराओं में समझौते हुए और आदान-प्रदान भी होता रहा। भारतीय संस्कृति विश्रृंखलित हो जाती। यदि वह लौकिक संस्कृतियों की स्वतंत्र छवि को नष्ट करने का दुराग्रह करती है। मेरी दृष्टि में शास्त्रीय परंपराओं और स्थानीय, जातीय और क्षेत्रीय परंपराओं का सह-अस्तित्व भारतीय समाज को विश्रृंखलन से बचाए रखने में सहायक हुआ है।

इस प्रकार से किसी भी लोक समाज के लोक साहित्य का मौखिक परंपरा होती है। यह मौखिक परंपरा के रूप में यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती है। इसके अंतर्गत कथा, गाथा, गीत, नृत्य, संगीत, हंसी-मज़ाक, पर्व-त्यौहार, विवाह, जन्म उत्सव इत्यादि के अवसर पर लोकवार्ता का विशेष महत्व होता है। खेत-खलिहान, युवागृह, जंगल, इत्यादि स्थानों पर जब लोग इकट्ठा होते हैं तब लोक साहित्य मौखिक परंपरा के रूप में प्रकट होने लगता है। भारत के किसी समाज के जन-जीवन को जानने-समझने के लिए उस समाज के लोक परंपरा जैसे- लोक-कला, लोक-गाथा, लोक-गीत, लोकोक्ति इत्यादि का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस शोध-प्रबंध में 'लोक परंपरा' पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। उसके सौंदर्यपरख कलाओं की सृष्टि के साथ ही मानव सभ्यता के विकास का सूत्रपात हुआ। लोक परम्पराएँ जीवन के अंग-प्रत्यंग से जुड़ी रहती थीं। कठिन शारीरिक काम को लोक संगीत से हल्के किए जाते थे। फसल काटना, नाव चलाना, पेड़ काटना, रोपाई करना इत्यादि का किसी न किसी प्रकार के लोक संगीत से जुड़ाव होता है। भारत निवासियों का जीवन सदा से कलात्मक रहा है और आज भी है। सरल शब्दों में 'भारत की अनेक जातियों व जनजातियों में

एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक चली आ रही पारंपरिक कलाओं को देखने के लिए आज भी मिलता है *(निरगुणे, 2012, दुबे, 1991 एवं देशवाल, 2004)* ।

लोक संस्कृति/लोक रहस्य की जब बात करते हैं तो अलग-अलग विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से संस्कृति को बताने का प्रयत्न करते हैं । जैसे- साहित्यकारों के लिए संस्कृति जीवन का प्रकाश और कोमलता है । कुछ विद्वान संस्कृति से नैतिक, आध्यात्मिक तथा बौद्धिक उन्नति समझते हैं । शाब्दिक अर्थ में 'संस्कृति' शब्द 'संस्कार' का रूपान्तर है । इस तरह से अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिए अनेक प्रकार के संस्कार को करना पड़ता है । इस प्रकार से जन्म से लेकर मृत्यु तक एक शुद्धि (Refinement) के लिए आवश्यक कृत्यों या संस्कारों की योजना को संस्कृति मान लिया जाता है । इसी तरह इतिहासकारों के लिए एक देश का कलात्मक अथवा बौद्धिक विकास ही संस्कृति है । मानवशास्त्रीय श्री टायलर (Tylor) के अनुसार- "संस्कृति वह जटिल समग्रता (Culture whole) है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून प्रथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है ।" इस तरह से मानव जीवनशैली की रहस्य को देखा जा सकता है *(मुकर्जी, 2010) ।*

युरोप में भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, और मानवविज्ञान, के क्षेत्रों में कुछ ऐसे भौतिकवादी सिद्धांतों की स्थापना हुई । जिससे प्रभावित होकर विद्वानों ने अपने देश की सामाजिक परंपराओं, धार्मिक विश्वासों तथा राजनैतिक संस्थाओं का अध्ययन करना प्रारंभ किया । युरोप में लोक संस्कृति के अध्ययन का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है । इस महाद्वीपों के विभिन्न देशों में अलग-अलग रीति-रिवाज, आचार-विचार और रहन-सहन की परंपरा प्रचलित थी ।

अठारहवी शताब्दी के शुरुआती में कुछ विषयों का अनुसंधान लोकप्रिय (पुरातत्व सामग्री) पुरावशेष (पापुलर एंटीक्वीटीज़ 'Popular Entiquities') के नाम से प्रसिद्ध है ।

सर्व प्रथम ब्रैंड ने 'पापुलर एंटीक़्वीटीज' के नाम से अपने ग्रंथ का प्रकाशन किया। जिसमें तत्कालीन आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज और विधि-विधानों का वर्णन किया था। ब्रैंड की यह पुस्तक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है जो इसके प्रति आकर्षित हुए ।

इंग्लैंड में टामस पर्सी ने इस दिशा में बहुमूल्य कार्य किये। ये गिरिजा घर के पादरी थे और पुरातन वस्तुओं के संग्रह में अत्यधिक रुचि रखते थे। सन 1765 में "रेलिक्स ऑफ एशिएंट इंग्लिश पोयट्री" (Reliques of Ancient English Poetry) नामक पुस्तक प्रकाशित की। जिसमें भूत-प्रेत परियों आदि की रोमांचक कथा और गीत विद्यमान थे। इस पुस्तक की नवीनता को देखकर युरोपीय विद्वान स्वभावतः ही इस ओर आकर्षित हुए ।

लोक संस्कृति के क्षेत्र में युरोप में व्यवस्थित रूप से कार्य करने का प्रारंभिक श्रेय ग्रिम बंधुवों को दिया जा सकता है क्योंकि इन्होनें आजीवन इस क्षेत्र में कार्य किया और अपना समस्त जीवन ही इसमें लगा दिया। ये दोनों भाई जेकब ग्रिम (1785-1863) तथा विलहेल्म ग्रिम (1786-1859) थे, जो जर्मन थे।

इन दोनों भाइयों ने मिलकर के और जर्मन गीतों तथा कथाओं का संग्रह ही नहीं किया बल्कि जर्मन माइथोलोजी (पुराण गाथा) पर अभूतपूर्व अनुसंधान कार्य भी किया। इन्होनें गीतों और कथाओं का वर्गीकरण करते हुए उनकी व्याख्या की। इन्होनें जर्मन की लोक कथाओं का एक प्रामाणिक संग्रह भी प्रकाशित किया जो "डायस हाउस होल्ड मार्शन" के नाम के अत्यंत प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ तथा प्रसिद्ध हुआ कि आज संसार की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद उपलब्ध है। पश्चिम जर्मन के 'कासेल' नामक नगर में इन ग्रिम बंधुओं से संबंधित एक संग्रहालय भी स्थापित है। जिसमें इनके स्मृति चिन्ह, फोटो, ग्रंथ, घरेलू सामान आदि संग्रहित है।

इसके बाद इंग्लैंड के विद्वानों ने प्राचीन प्रथाओं, विश्वासों, आचार-विचार, लोकगीतों आदि संग्रह पर विशेष ध्यान दिया। सन 1846 ई. में इंग्लैंड के ही विलियम थॉमस नामक

विद्वान ने पूर्वकाल में प्रचलित 'पापुलर एंटीक्वीटीज' के भावों को घोतित करने के लिए 'फोकलोर' से संबंधित मनुष्य के रीति-रिवाज, अंधविश्वास, रहन-सहन, विधि-विधान विविध क्रिया-कलापों तथा लोकगीत एवं कथाओं से था। थॉमस के द्वारा निर्मित यह 'फोकलोर' शब्द इतना प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हुआ कि आज युरोपीय देशों ने जर्मन लोगों को छोड़कर- इसे सर्व सम्मति से ग्रहण किया है। थॉमस ने विद्वानों के मतों के आदान-प्रदान के लिए "नोट एंड क्वेरीज़" शीर्षक से एक पत्रिका भी प्रकाशित करना प्रारंभ किया। जिसमें लोक संस्कृति से संबंधित बहुमूल्य सामग्री प्रकाश में आने लगी।

थॉमस महोदय ने सन 1846 में इंग्लैंड में एक 'लोक संस्कृति परिषद' (फोकलोर सोसायटी) की स्थापना की, जो केवल युरोप में ही नहीं बल्कि विश्व में अपने ढंग की सर्वप्रथम संस्था थी। इस संस्था में अपनी 'फोक-लोर' नामक शोध पत्रिका के द्वारा सारे संसार में लोक संस्कृति के संबंध में नव जागरण उत्पन्न किया। इसके अलावा विभिन्न संस्थाओं पर एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन का केंद्र खुल गया। जैसे- स्वीडेन- में लोक संस्कृति के विभिन्न अवयवों के संग्रह पद्धति की नार्वे की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है। इस देश में चार विश्वविद्यालय हैं, जिनमें प्रत्येक में लोक संस्कृति के विभिन्न अंगों पर विशेष अनुसंधान किया जाता है। अमेरिका- 20वीं शताब्दी में अमेरिका का इण्डियाना विश्वविद्यालय फोकलोर (लोक संस्कृति) के अध्ययन का केंद्र माना जाता है। जर्मनी- में लोक संस्कृति के अध्ययन की परंपरा बड़ी ही महत्वपूर्ण है। यहीं के ग्रीम बंधुओं ने लोक साहित्य के वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रारंभ किया था। पश्चिम जर्मनी के गांट्रिगन नामक नगर में लोक संस्कृति शोध संस्थान (फोकलोर रिसर्च इंस्टीट्यूट) स्थापित की गई है। जहां इस संबंध में शोध कार्य होता है। फ़िनलैंड- के तुर्कू नामक नगर में "नार्डिक फोकलोर इंस्टीट्यूट" नामक संस्थान का प्रधान केंद्र स्थापित है *(उपाध्याय, 2009)*।

भारत में लोक संस्कृति के अध्ययन की शुरुआत दो प्रकार के संप्रदायों नें किया : प्रथम- अंग्रेज़ सिविलियन तथा दूसरा- ईसाई मिशनरी। इस देश में शासन करने के लिए आए पहले

वर्ग के लोग और धर्म प्रचारक के लिए आए लोग। इन दोनों ही वर्गों के लोग यह अच्छे तरह से जानते थे कि अपने कार्य के सिद्धि के लिए इस देश के साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति का सम्यक अधययन करना आवश्यक है। इसलिए सन 1774 ई. में आज से दो सौ वर्षों पूर्व कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के जज विलियम जोन्स ने कलकत्ता में 'रायल एसियाटिक सोसायटी' की स्थापना की। भारतीय लोक संस्कृति के अनुसंधान के इतिहास में सन 1774 का वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि भारतीय इतिहास, दर्शन, तथा संस्कृति के वैज्ञानिक पद्धति से अनुसंधान की शिलान्यास इसी वर्ष में किया गया। इस सोसायटी ने एक शोध पत्रिका का भी प्रकाशन प्रारंभ किया जिसमें सर्वप्रथम लोक गीतों तथा कथाओं का प्रकाशन हुआ। भारतीय इतिहास तथा संस्कृति को उजागर करने के लिए इस सोसायटी ने अपने दो सौ वर्षो के जीवन में अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया। जिसमें से कुछ ग्रंथ लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति से भी संबंध रखते हैं। इस तरह से लोक संस्कृति के इतिहास में इस सोसायटी की स्थापना का अत्यधिक महत्व है।

लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य के अनुसंधान का वास्तविक आरंभ सर्वश्री जेम्स टाड़ को प्राप्त है। जिन्होनें राजस्थान की लोक कथा तथा लोक गाथा आदि का संकलन कर उनके आधार पर अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'एनाल्स एंड एंटीक्वीटीज़ ऑफ राजस्थान' का निर्माण 1829 में किया। चार्ल्स ई. गोवर ने सन 1871 ई. में 'फोक सांग्स ऑफ सदरन इंडिया' नामक पुस्तक को प्रकाशित किया। इसमें दक्षिण भारत की चार प्रसिद्ध भाषाओं- तमिल, तेलुगू, कन्नड़, और मलयालम के लोक गीतों का संग्रह किया गया है। भारतीय लोक गीतों के संग्रह की यह सर्वप्रथम पुस्तक मानी जाती है। आर.सी. टेंपुल ने सन 1884 ई. में 'लीजेंड्स ऑफ दि पंजाब' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसमें पंजाब के प्रसिद्ध लोक वीरों की गाथाएँ संग्रहीत है। विलियम क्रुक ने भी भारतीय लोक संस्कृति के क्षेत्र में प्रचुर योगदान किया है। सन 1891 ई. में इन्होनें 'नार्थ इंडियन नोट्स एंड क्वेरीज़' नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जिसमें लोक संबंधी बहुमूल्य सामग्री छपती थी। सन 1905 ई. में एफ हान ने 'कुरुख फोकलोर इन ओरिजिनल' में उरांव जनजाति के लोगों के 200 गीतों को मूल रूप में प्रस्तुत किया गया

है। सन 1916 ई. में डॉ. हीरा लाल तथा रसल ने मध्य-प्रदेश की जनजातियों के संबंध में 'दि ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ सेंट्रल प्राविन्सेंज ऑफ इंडिया' चार वृहद भागों में प्रकाशित किया। सन 1920 ई. तक आते-आते लोक साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन की ओर देशी विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ और ये अपनी राष्ट्रीय धरोहर की रक्षा के लिए तन, मन, और धन से जुट गए। इन लोगों ने अपना जीवन ही इसमें समर्पित कर दिया *(उपाध्याय, 2009)।*

संदर्भ साहित्य का अध्ययन-

इस लघु शोध को पूर्ण करने के लिए कुछ पुस्तकों का सहारा लिया गया है, जो कि लोक संस्कृति के विभिन्न प्रकार के लोक रहस्य से संबंधित हैं। निम्नलिखित मानवशास्त्रियों व अन्य विद्वानों के अध्ययन उलेखनीय है-

डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव 1988 में अपनी पुस्तक "भारतीय कला" में कला के प्रारूप, कला के विकास, चित्रकला एवं मूर्तिकला, कला के प्रकार, कला का महत्व, कला के तत्व, भारतीय कला के विशेषताएँ, मृदभांड कला और चित्रकला, संस्कृति की संवाहिका, धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता आदि के बारे में अनेक प्रकार के प्राचीन कलाओं के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

प्रो. श्यामाचरण दुबे 1991 में अपनी किताब "परंपरा इतिहास-बोध और संस्कृति" में परंपरा की परिधि एवं लोक और संस्कृति में आदिवासी धरोहर लोक कलाओं का भविष्य, संस्कृति और सत्ता, संचार और सांस्कृतिक विकास, परंपरा : कुछ विचार, कुछ प्रश्न, आदि से संबंधित चर्चा करते हुए समझाने का प्रयास किया है।

प्रो. श्यामचरण दुबे 1996 में अपनी किताब "समय और संस्कृति" में परंपरा और लोक कलाओं से संबंधित आदिवासी धरोहर, लोक कलाओं का भविष्य, आज की समाज

दृष्टि, परंपरा की परिधि, समन्वय और सहयोग की परंपरा, परंपराओं व संस्कृतियों का सह-अस्तित्व आदि विभिन्न प्रकार के उल्लेख किया है।

डॉ. मोहन सिंह मावड़ी 2002 में अपनी पुस्तक "भारतीय कला सौन्दर्य" में कला सौन्दर्य से संबंधित कला एवं कल्पना, कला एवं संचारण, कला एवं प्रकृति, कला एवं धर्म, कला एवं समाज, कला एवं परंपरा, कला एवं शिक्षा, कला एवं नैतिकता, लोक कला, कला सौन्दर्य में ध्वनि सिद्धांत, कला सौन्दर्य में रस सिद्धांत और कला में सुंदरता एवं सौन्दर्य के अर्थ के बारे में विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे 2003 में अपनी किताब "लोक परंपरा, पहचान एवं प्रवाह" में लोक संस्कृति के संदर्भ में मूर्त और अमूर्त की दृष्टि, आधुनिकता और लोक संस्कृति की प्रसंगितता, लोक पर संस्कृत का प्रभाव तथा उसकी अंतःक्रियाएँ, मानवीय मूल्य और लोक साहित्य एवं लोक भावना आदि के बारे में विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास किया है।

डॉ. संतराम देशवाल 2004 में अपनी पुस्तक "हरियाणा: संस्कृति एवं कला" में संस्कृति और से संबंधित कला परंपरा, संस्कार गीत, पर्व-त्यौहार के गीत, ऋतु के गीत भित्ति चित्र, लोक संस्कृति, संस्कृति एवं लोक संस्कृति का संबंध, कला एवं संस्कृति का संबंध आदि के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

डॉ. टी. के. वैष्णव 2004 में अपनी पुस्तक "छतीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ" में कुछ जनजातियों के पारंपरिक गतिविधियों से संबंधित सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में विभिन्न जनजातियों के जनसंख्या एवं भौगोलिक वितरण, उत्पत्ति, भौतिक संस्कृति, आर्थिक जीवन, सामाजिक संरचना, जीवन चक्र, धार्मिक जीवन, लोक कलाएं, आदिम जनजातीय समूह, आर्थिक परिदृश्य आदि का उल्लेख किया है।

डॉ. मुकुल रंजन गोयल 2004 में अपनी पुस्तक "कंवर जनजाति संस्कृति और संगठन" में कंवर जनजाति का परिचय बताते हुए सामाजिक-जीवन पथ के संस्कार, नातेदारी

व्यवस्था, धार्मिक जीवन में काँड़ी छांटना, जागर बैठाना, पर्व-त्यौहार, नवा खाई आदि । आर्थिक जीवन में कृषि मजदूरी, पशुपालन, शिकार एवं मत्स्य आखेटन आदि के बारे में विस्तार पूर्वक रूप से वर्णन किया है।

डॉ. शिव कुमार तिवारी 2005 में अपनी पुस्तक "मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति" में जनजातीय परंपरायें के बारे में विस्तार पूर्वक चर्चा करते हुए जनजातीय श्रंगार में गोदना (गुदना), केश विन्यास, वस्त्र-आभूषण आदि । जनजातीय काष्ठ शिल्पकला में गुणी खंभ, मेघनाथ खंभ, घाँस की मालाएँ, मिट्टी से निर्मित अनुष्ठानिक बर्तन आदि के बारे में विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास किया है।

डॉ. गया पाण्डेय 2007 में अपनी किताब "भारतीय जनजातीय संस्कृति" में जनजातीय लोक कला एवं विभिन्न प्रकार के लोक संस्कृति के बारे में जनजातीय जीवन चक्र एवं व्यक्तित्व संरचना में जीवन चक्र अनुष्ठान, गर्भधारण, जन्म अनुष्ठान, छठी, बरहों, नामकरण, जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ एवं समाजीकरण। जनजातीय लोकसाहित्य एवं कला में विभिन्न प्रकार के लोक कला की सोपान लोक गीत, लोक नृत्य, हंसी-मज़ाक, अतिथि सत्कार शब्द एवं लोक कला के बारे में समझाने का प्रयास किया है।

प्रो. योगेंद्र सिंह 2008 में अपनी पुस्तक "भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण" में भारतीय परंपरा से संबंधित चर्चा करते हुए समझाने का प्रयास किया गया है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय 2009 में अपनी पुस्तक "लोक संस्कृति की रूपरेखा" में लोक संस्कृति से संबंधित पशु-पक्षी संबंधी लोक विश्वास, लोक कथाओं की प्राचीन परंपरा, लोक विश्वास, ललित कला, लोक नृत्य, लोक गीत, लोक संगीत, लोक गाथा, लोक कला , रीति-रिवाज, व्रत एवं त्यौहार, ऋतु संबंधी गीत, संस्कार संबंधित गीत, आदि लोक रहस्य के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

श्री बसंत निरगुणे 2012 में पुस्तक "लोक संस्कृति" में विभिन्न प्रकार के लोक संस्कृति के विभिन्न सोपान जैसे- लोक कथा, लोक गीत, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक कला, परंपरा आदि लोक संस्कृति के अनेक सोपानों को विधिवत रूप से विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

अध्ययन का उद्देश्य-

किसी भी शोध के लिए सबसे महत्वपूर्ण उसके उद्देश्य को निर्धारित करना आवश्यक होता है। मेरे शोध का मुख्य उद्देश्य 'पनिका' जनजाति के लोक संस्कृति/रहस्य के आंतरिक गुणों को जानना था और साथ ही साथ समाज में प्रचलित आचार-व्यवहार स्वीकृत शैली या रीति-रिवाज की विभिन्न विधि-विधानों आदि वास्तविक जीवन को लोक संस्कृति के माध्यम से भली-भाँति जानने का प्रयास है। मेरे शोध विषय 'पनिका' जनजाति की लोक परंपराओं का अध्ययन है और उनके लोक संस्कृति/लोक रहस्य की प्रचलित प्रवाहित धाराओं की अभिव्यक्ति को जानने का प्रयास किया गया है। जिसमें लोक संस्कृति/लोक रहस्य के कुछ आयामों का समावेश है। अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- ➢ कलात्मक परम्परा एवं उनके अभिव्यक्ति के माध्यम से कला परंपराओं का अध्ययन।
- ➢ संस्कार, रीति रिवाज परंपराओं को समझने हेतु प्रचलित प्रवाहित धाराओं का अध्ययन।
- ➢ व्रत और त्यौहार परंपराओं की आधुनिक परिवेश में बदलते स्वरूप का अध्ययन।

अध्ययन का महत्व-

लोक परंपरा को समझने के लिए अन्तः दृष्टि की आवश्यकता होती है जो सिर्फ क्षेत्र कार्य से ही संभव हो सकती है। समाज समय-समय पर विभिन्न परिवर्तनों से गुजरता है और उनसे प्रभावित होता है। वर्तमान समय आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा पश्चिमीकरण का समय चल रहा है और समाज के मापदंड इन चीजों से पूर्णतः प्रभावित हो रहें हैं। पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण आदि को अपनाते जा रहें हैं। अतः लोक परंपराओं के विभिन्न प्रारूपों तथा श्रेणियों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि लोक परंपरा में मानवशास्त्रीय व्यवहार में 'लोक परंपरा' शब्द के विभिन्न प्रकार से अर्थ का प्रयोग किया गया है। जैसे- संस्कार, पर्व-त्यौहार, लोक कथा, लोक गाथा, लोक गीत, हंसी-मज़ाक, तथा उच्चारण द्वारा अन्य प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होता रहता है। इनकी लोक परम्परा इनकी संस्कृति से जुड़ी होती है परंतु इस लोक परंपरा पर लिखित प्रमाणों के अभाव है। जिसे सूचना द्वारा लिपिबद्ध के माध्यम से संरक्षित किया जाना अतिआवश्यक है। इस प्रकार से प्रस्तावित शोध-प्रबंध में 'पनिका' जनजाति की लोक परंपराओं को निहित प्रतिकात्मक रूपों को जानना आवश्यक है। अतः इस दृष्टि से भी यह शोध अति महत्वपूर्ण होगा क्योंकि यह शोध एक प्रकार का मानवशास्त्रीय शोध है। जिसके है।

मानव जीवन के लिए संस्कृति/लोक रहस्य एक आंतरिक गुणों का विकास करता है। संस्कृति के जरिए मनुष्य जीवन में संस्कृति के मूल्य सिद्धांतों और तत्वों को ग्रहण करता चला जाता है। धीरे-धीरे मनुष्य के प्रत्येक क्रिया-कलाप, चिंतन और अभिव्यक्ति में संस्कृति उस समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उसकी आंतरिक गुण संस्कृति के रंग में रंग जाती है। उसका मन मस्तिष्क अपनी संस्कृति से अगाध प्रेम करने लगता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी संस्कृति पर गौरव करने लगता है, तब रक्षा की भावना मनुष्य में प्रबल हो जाती है। संस्कृति/लोक रहस्य आदमी को पहचान देती है। अपनी देश को भी पहचान देती है। लोक संस्कृति/लोक रहस्य

का केंद्र मनुष्य है। स्त्री-पुरुष लोक संस्कृति की धुरी के दो पहिए हैं। दोनों ने मिलकर लोक संस्कृति का निर्माण किया। मनुष्य के लोक संस्कृति/लोक रहस्य को विभिन्न सोपानों के माध्यम से परिचित हुआ जा सकता है। जैसे- विश्वासों, रीतियों, व्यवहारों, परम्परओं आदि संकल्पों से है। जहाँ-जहाँ तक मनुष्य की बुद्धि और कल्पना पहुँचती है वहाँ-वहाँ तक लोक संस्कृति की सीमा मानी जा सकती है। जब तक मनुष्य रहेगा तब तक लोक संस्कृति/लोक रहस्य बदलते स्वरूप में देखने को मिलते रहेगा।

विषय का चयन-

मेरे शोध का विषय- 'पनिका' जनजाति की लोक परंपराओं का अध्ययन है। अतीत की परंपरा को वर्तमान तक लाना और उसे भविष्य तक विस्तारित करना उनका सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। मैं मानवविज्ञान का विद्यार्थी हूँ और मैं जनजातीय गाँव बहूल्य क्षेत्र से हूँ। मुझे 'पनिका' जनजाति की लोक परंपराओं के विभिन्न लोक रहस्य को जानना था, इसलिए मुझे लोक परंपरा के जीवन दर्शन और मानव प्रकृति के अंतर्संबंधों के लोक परंपरा की रूपरेखा को जानने हेतु मेरे मन में जिज्ञासा पैदा हुई। इसलिए जांचने परखने एवं समझने के लिए 'लांघा टोला' गाँव के 'पनिका' जनजाति बहूल्य क्षेत्र को पनिका जनजाति के लोक परंपराओं को ज्ञात करने हेतु मैं अपने शोध विषय के लिए चयन किया।

परिकल्पना-

- 'पनिका' जनजाति की लोक परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होने वाली परंपरा है, जो वर्तमान समय में अन्य जनजातियों से भिन्न है।
- 'पनिका' जनजाति की लोक परंपरा परिवर्तन होने से इसके अस्तित्व को खतरा बढ़ा है।

शोध से संबंधित मानचित्र

भारत का मानचित्र-

मध्य प्रदेश राज्य का मानचित्र-

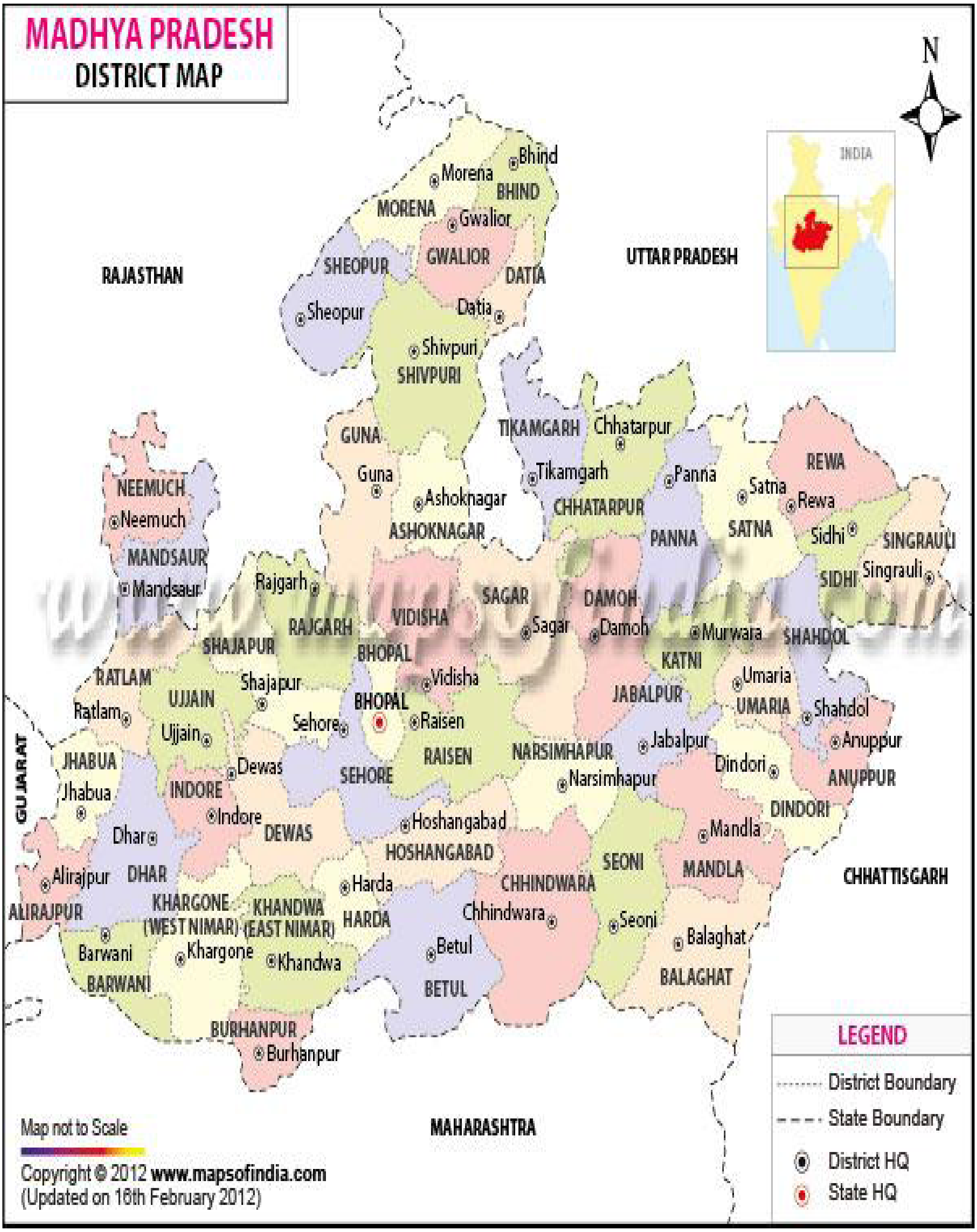

अनूपपुर जिला का मानचित्र-

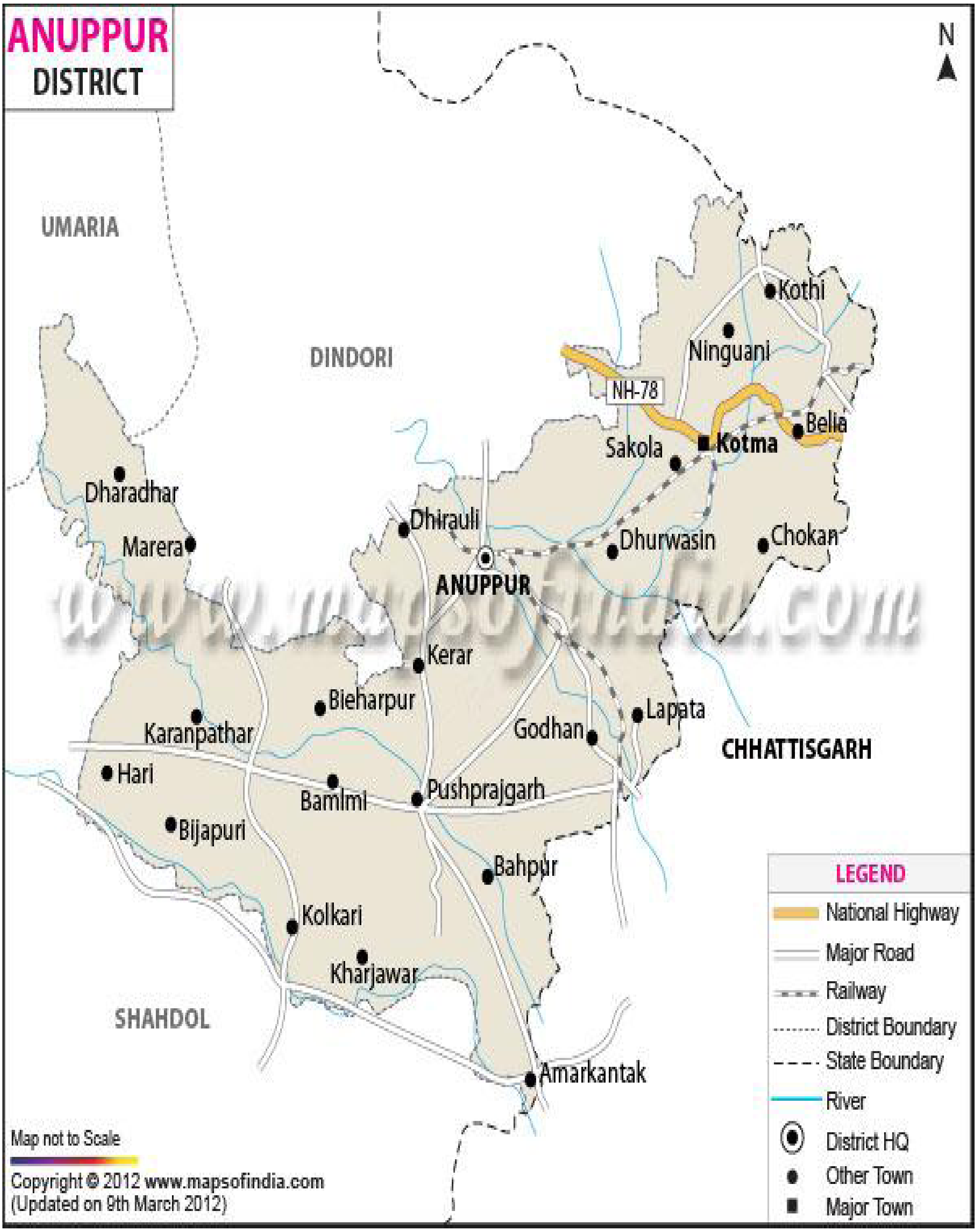

गाँव एवं मुख्य सड़क का प्रारूप-

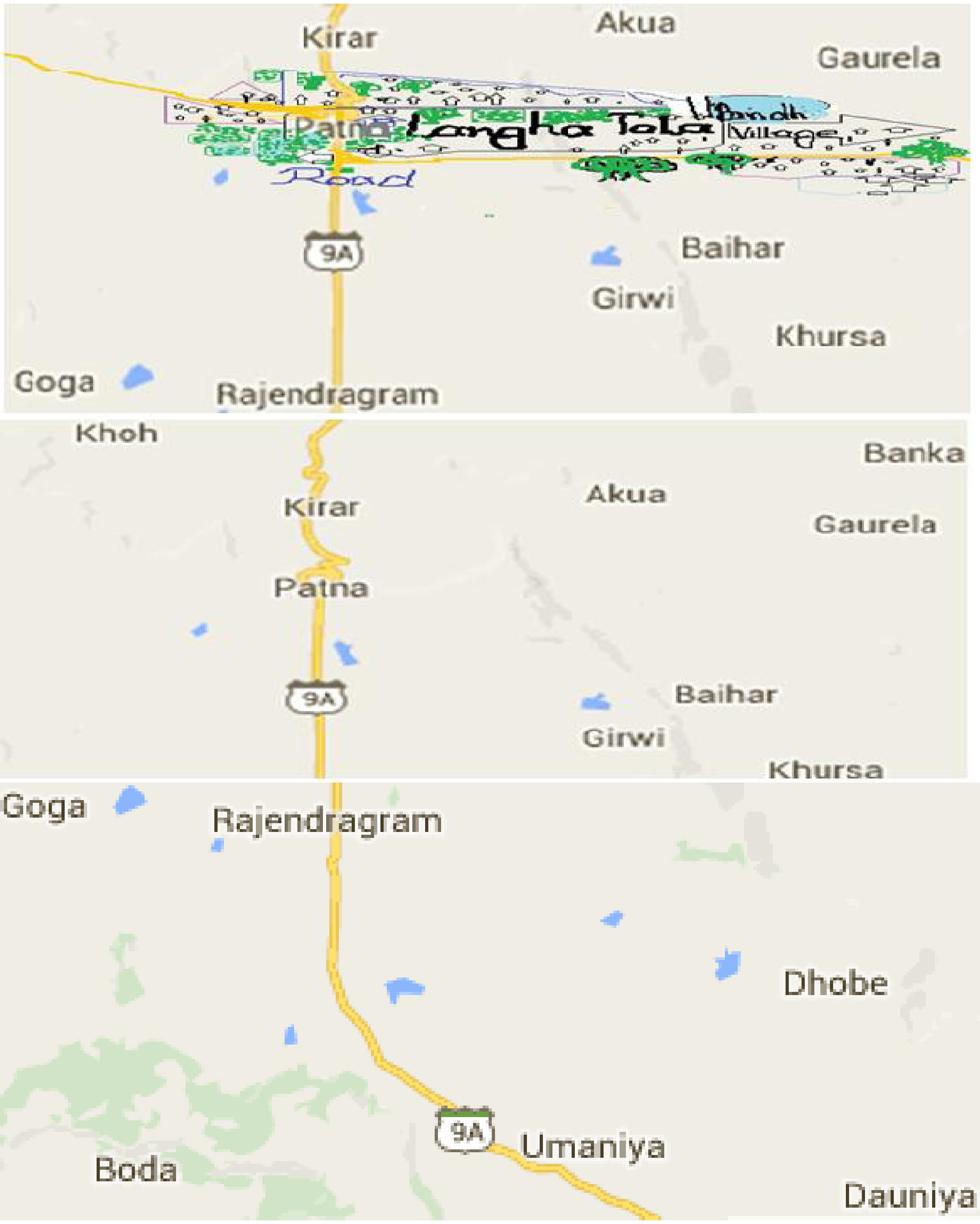

प्रथम-अध्याय

शोध प्रविधि, अध्ययन क्षेत्र एवं लोग

पद्धति एक विशिष्ट तरीका है। जिसकी सहायता से शोध या अध्ययन की समस्या के बारे में क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि पद्धति का अभिप्राय वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने में सहायता करता है। मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है। मनुष्य ने प्रकृति को समझने एवं अपनी समस्याओं के समाधान के लिए हमेशा प्रयास किया है। अज्ञात तथ्यों का पता लगाने की दिशा में निरंतर आगे बढ़ता जा रहा है। अनुसंधान नवीन तथ्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अनुसंधान के दौरान कुछ कठिनाइयाँ तो आती रहती है लेकिन उन कठिनाइयों को सरल किया जाता है अगर हम मानवशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले विधियों को अपनाएं। ये विधियाँ अनुसंधान कार्य करने के लिए हमारे सहायता करती है। जिसके सहायता से मैंने अनुसंधान कार्य को सरल करने का प्रयास किया है। अतः अपने अनुसंधान कार्य में निम्न विधियों का प्रयोग किया हूँ।

प्राथमिक स्रोत-

शोध विषय से सबंधित तथ्यों के संकलन करने के लिए निम्न पद्धति एवं उपकरण का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार है-

अवलोकन विधि-

अवलोकन अनुसंधान की एक प्रविधि है। अवलोकन प्रविधि शोध तथ्यों को संकलित करने की एक प्रत्यक्ष प्रविधि है। इस विधि के अंतर्गत देखकर अध्ययन करना या आंकड़े एकत्रित करना अवलोकन कहलाता है। किसी तथ्य अथवा घटना को जानने अथवा देखने की क्रिया को अवलोकन कहते हैं। अवलोकन प्रविधि विश्वसनीय होता है क्योंकि आँखों से प्रत्यक्ष रूप से देखकर और उसे लिखना होता है। सरल शब्दों में अवलोकन का

अर्थ है- देखना, सुनना, समझना। मानवशास्त्रीय अध्ययन में अवलोकन पद्धति का विशेष स्थान है।

मैंने अपने अध्ययन के दौरान अवलोकन पद्धति पर विशेष ध्यान दिया। मैं अपने अध्ययन के दौरान सूचनादाताओं के द्वारा गाए हुए पारंपरिक गीतों को सुनकर अपने डायरी में नोट किया और साथ ही साथ उनके सभी गतिविधियों को देखकर, सुनकर समझा और डायरी में नोट भी किया। सहभागी अवलोकन का प्रयोग किया और तथ्यों का एकत्रित किया है।

संरचित साक्षात्कार अनुसूची-

इसके अंतर्गत यह अध्ययन में शोध विषय से संबंधित तथ्यों को इकट्ठा करने के लिए संरचित साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। जिसमें शोध विषय से संबंधित महत्वपूर्ण तथा उपयोगी प्रश्नों को संरचित किया गया था। जिससे शोध संबंधी प्रश्नों को क्रमबद्ध तरीके से पूछकर तथ्यों का संकलन किया गया है। मैं अपने अध्ययन के दौरान विभिन्न कलात्मक परंपराओं की, संस्कार रीति-रिवाज संबंधित विभिन्न सोपानों की, व्रत एवं त्यौहार संबंधी प्रश्नों की सूची का प्रयोग किया और संरक्षित साक्षात्कार अनुसूची के सहारे से सूचनादाताओं के द्वारा बताए गए तथ्यों को एकत्र किया।

साक्षात्कार विधि/ साक्षात्कार निर्देशिका-

साक्षात्कार अनुसंधान आंकड़े संकलन करने की एक पुराना और बहुचर्चित प्रविधि है। साक्षात्कार का शाब्दिक अर्थ सूचनादाता के आंतरिक जीवन को देखना है अर्थात भीतरी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है। इस प्रविधि में अनुसंधानकर्ता एवं सूचनादाता दोनों आमने-सामने होते हैं। अनुसंधानकर्ता अपने प्रश्नों से सूचनादाता के द्वारा तथ्यों की जानकारी प्राप्त

करता है। अनुसंधानकर्ता को सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष या आमने-सामने का संपर्क स्थापित करके उनसे आंकड़े संकलन करने से है। सूचनादाता और अनुसंधानकर्ता के बीच आमने-सामने के प्रत्यक्ष, घनिष्ठ व्यक्तिगत एवं व्यक्तियों के के साथ संबंध स्थापित करना है ताकि अधिक से अधिक विश्वसनीय सूचनाएँ प्राप्त करने से है। मैंने अपने अध्ययन के दौरान कुछ बिन्दुओं पर आमने-सामने की स्थिति में बात-चीत की और तथ्यों का संकलन किया। अपने अनुसंधान कार्य के दौरान मैंने व्यक्तिगत और सामूहिक साक्षात्कार का प्रयोग किया है।

साक्षात्कार निर्देशिका शोध प्रसंगों से संबंधित बिन्दुओं की एक सूची होती है। इस साक्षात्कार अनुसंधान में आंकड़े संकलन करने की एक प्राचीन एवं बहुचर्चित प्रविधि है। जिसका प्रयोग साक्षात्कार प्रविधि द्वारा तथ्यों से संबंधित प्रश्नों की सूची तैयार कर अनुसंधानकर्ता स्वयं सूचनादाता के समक्ष जाकर तथ्यों की जानकारी प्राप्त करता है। निर्देशिका का मुख्य उद्देश्य साक्षात्कार वार्तालाप के क्रम को चालू रखना तथा आगे वार्तालाप करने हेतु नए प्रसंगों को सुझाना है। मैंने स्वयं सूचनादाता के समक्ष जाकर साक्षात्कार निर्देशिका के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया। कभी-कभी अध्ययनकर्ता के समक्ष बिना अनुसूची के तथ्य संग्रह करने में कठिनाइयाँ सामने आ जाती है, इसलिए अपने विषय से हमेशा सही तथ्य की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की।

छायाचित्रण तथा वीडियो रिकॉर्डिंग-

छायाचित्रण एक ऐसी प्रविधि है जो शोध कार्य के अध्ययन को प्रमाणित व यथार्थ स्वरूप प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है। मानवशास्त्रियों के लिए कैमरा एक नोट बुक की तरह है। जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता तथ्यों, प्रादर्शों के फोटो खींच कर व्यवस्थित रूप से तथ्यों का विश्लेषण करता है। छायाचित्रण तथा वीडियो रिकॉर्डिंग का होना इस शोध विषय में अतिआवश्यक है जिससे की शोधकर्ता को प्रत्यक्ष रूप से चल रहे लोक परंपरा से संबंधित

संस्कार-गीत, पर्व-त्यौहार गीत, लोक गीत, संगीत, लोककथा इत्यादि को रिकॉर्ड करना होता है। अनुसंधानकर्ता इसके अंतर्गत भौतिक संस्कृति को लेकर अनेक प्रकार के प्रादशों, तथ्यों का छायांकन शोध कार्य के दौरान करता है। जो शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण होगा।

मैनें अपने शोध कार्य में वास्तविकता के लिए छायाचित्रण एवं वीडियो रिकॉर्डिंग का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत मैंने अपने विषय के वास्तविकता के लिए विभिन्न तथ्यों जैसे- सूचनादाताओं से वार्तालाप करते समय का और इत्यादि का वास्तविक छायाचित्रण किया है।

क्षेत्र दैनिकीय-

'क्षेत्र दैनिकीय' अनुसंधानकर्ता के लिए यह एक ऐसा माध्यम है जो अनुसंधान कार्य में अनुसंधानकर्ता की मदद करता है। रिपोर्ट बनाते समय अनुसंधानकर्ता इसकी मदद लेता है। मानवविज्ञान जैसे विषय में जितने दिन क्षेत्रीय कार्य करना होता है उतने ही दिन का विधिवत रूप से क्षेत्र दैनिकीय लिखना होता है।

मैं अनुसंधान क्षेत्र में किए गये अवलोकन, साक्षात्कार और साक्षात्कार निर्देशिका के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। साथ ही साथ आंकड़ों को प्रतिदिन अपनी डायरी में लिखा, जिसके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण एवं वर्गीकरण किया गया है।

द्वितीयक स्त्रोत-

प्राथमिक स्त्रोत के अतिरिक्त मैंने अपने तथ्यों के संग्रहण के लिए विभिन्न पुस्तकों का प्रयोग किया। इसके साथ ही साथ मैंने इन्टरनेट, नक्शा का प्रारूप, पत्र-पत्रिकाएँ इत्यादि के माध्यम से सूचनाएँ एकत्रित करने का प्रयास किया है।

कठिनाइयाँ एवं सीमाएँ-

इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मुझे कई कठनाइयों का सामना करना पड़ा परंतु इन कठिनाइयों तथा सीमाओं को नजर अंदाज करते हुए मैंने अपने अध्ययन को पूर्ण करने का प्रयास किया। विस्तृत सूचनाएँ पूछने का प्रयास किया। सूचनादाताओं ने मुझे बताने का भी प्रयास किए। समय न होने के कारण वृद्ध पुरुष एवं महिलाओं से कम समय में पूछ-ताछ किया, जिन्होनें बताने का पूरा प्रयास किया। मेरे अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित कठिनाइयों एवं सीमाओं का सामना करना पड़ा-

- साक्षात्कार के समय ज़्यादातर महिलाएं अपने कार्यों में व्यस्त थीं, जो पूछते समय समस्याओं का सामना करना पड़ा।
- शोध कार्य करते समय तथ्यों का संकलन करने गया तब कुछ लोगों ने बताने से इंकार कर दिया।
- शोध क्षेत्र में लोगों के पास समय का अभाव।
- मौसम का अचानक खराब होना।

अध्ययन क्षेत्र एवं लोग

मध्य-प्रदेश राज्य के अनूपपुर जिला व शहडोल जिला में 'पनिका' जनजाति निवास करती है। इसके अलावा शहडोल, उमरिया, सिंगरौली आदि जिला में निवास करती है। अनूपपुर जिला के पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में पनिका जनजाति बहूल्य क्षेत्र है। इसके अलावा अमरकंटक से लेकर शहडोल तक पनिका जनजाति सघन रूप में निवास करती है। पनिका जनजाति मुख्यतः जंगलों, पहाड़ों, घाटियों व नदी के किनारे के ग्रामों में अन्य जनजातियों एवं समुदायों के साथ जैसे- गोंड, बैगा, लोहार, अगरिया, पंडित, महरा, कोल आदि के साथ मध्य-प्रदेश में निवास करती है। 2011 के जनगणना के अनुसार मध्य-प्रदेश के कुल जनसंख्या

72,626,809, है । जिसमें से अनूपपुर जिला के कुल जनसंख्या 2011 के जनगणना के अनुसार 7,49,237 है । पुरुष एवं महिला क्रमशः 379114 और 370123 है । ग्रोथ-12.30%, एवं लिंग अनुपात 976 है । साक्षारता का दर 67.88, क्षेत्र वर्ग किलो मीटर 3747 एवं 200 वर्ग किलो मीटर घनत्व है । अनूपपुर मध्य भारत के मध्य प्रदेश राज्य में एक शहर है । यह अनूपपुर जिले का प्रशासनिक मुख्यालय है । इससे पहले यह शहडोल जिला का एक हिस्सा था *(जनगणना, 2011)* ।

पुष्पराजगढ़ क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले सघन पनिका जनजाति के (अमरकंटक बेल्ट से लेकर शहडोल तक) कुछ गाँव जैसे- पोड़की, बरसोत, लालपुर, मेढ़ाखार, पोंडी, भेजरी, डाकिया टोला, बसनिहा, राजेन्द्रग्राम, लांघा टोला जो मेरा शोध क्षेत्र था । इसके अलावा नगुला बरटोला, अमलाई, चचाई, बुढ़ार, धनपुरी एवं शहडोल आदि हैं ।

ग्राम लांघा टोला (पटना) पोस्ट शिवरीचंदास थाना राजेंद्रग्राम विकासखंड पुष्पराजगढ़ जिला अनूपपुर मध्य-प्रदेश मेरा शोध क्षेत्र था । जो लांघा टोला (पटना) गाँव के कई छोटे-छोटे मोहल्ला हैं जैसे- सेम्हर टोला, बाघिन टोला, नवा टोला, डोंगरी टोला, भर्रा टोला, डूमर टोला, हर्रवाह, बधार, एवं चिरईपानी आदि छोटे-छोटे मोहल्ला हैं । रहने के मकान सघन रूप से छोटे-छोटे मिट्टी व कुछ पक्का मकान विरल रूप से बने हुए हैं । घर की छत घास-फूस या खपरैल की बना हुआ है । घर का निर्माण अपने आस-पड़ोस में रहने वाले लोगों से व स्वयं करते हैं । घर दो तीन कमरे के बने हुए हैं तथा घर के सामने बरामदा होता है । दरवाजे बांस या लकड़ी के बने होते हैं । घर के सामने दीवारों से घिरा आँगन रहता है । घर के बगल में क्यारी बनाए रहते हैं जिसे ग्रामीण बोली में ‘कोल्की’ कहते हैं । जिसमें विभिन्न प्रकार के सब्जी भाजी लगाते हैं । घर के अंदर अनाज रखने की कोठी मिट्टी से बनी होती है । एक किनारे पर देवी-देवता का स्थान होता है । घरेलू समान में सोने के लिए चारपाई (खटिया), बैठने हेतु चटाई व मचिया, पीढ़ा, अनाज कूटने के ढेंकी, काँड़ी-मूशर, अनाज़ साफ करने का जाता जो मिट्टी से निर्मित होता है एवं अनाज पीसने हेतु चकिया जो पत्थर का बना होता है इसके अलावा विभिन्न प्रकार के सामग्री देखने को मिलता है ।

खेती के उपकरण में हल, कुल्हाड़ी, कुदारी, गैंती, फावड़ा, खलुवा, हंसिया, इसके अलावा भी विभिन्न प्रकार के सामग्री देखने के लिए मिलता है। साथ ही साथ खेती करने के लिए बहुत ही मेहनत युवक एवं युवतियाँ करते हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर अन्य काम भी करते है। वस्त्र विन्यास में पुरुष धोती/पेंट, सर्ट, बड़ी स्त्रियाँ लुगरा पोलका पहनती हैं। इनका मुख्य (भोजन) खाद्य पदार्थ- चावल, कोदो, कुटकी का पेज, भात, बासी, उड़द, मूंग, अरहर (राहर), मसूर, तिवरा, मटर, चना, की दाल आदि। मौसमी सब्जी मांसाहारी में मुर्गा, बकरा, खरगोश, मछली आदि खाते हैं। महुआ से स्वनिर्मित शराब पीते हैं। लेकिन वर्तमान समय में शाकाहारी भोजन करने वाले भी अत्यधिक मात्रा में देखा जा सकता है। जिसका मुख्य कारण "जय माता दी" में शामिल होने से है जो पूजा-पाठ करने के वजह से शाखाहारी भोजन करते हैं । ये अपनी परंपरा से बंधे हुए हैं अपने पूर्वजों के अनुसार परंपराओं को चलाते हैं। प्रत्येक उत्सव, पर्व-त्यौहार, संस्कार, सामाजिक भोज तथा विवाह गौना के अवसर पर पनिका जनजाति के लोग नृत्य जैसे- करमा, सुआ, शैला, फगुआ, आदि नृत्य करते हैं। इसके अलावा गीत-संगीत में भी अपनी रुचि रखते हैं। जो समय-समय पर मनोरंजन के रूप में सामूहिक गाते बजाते रहते हैं। अपने घरों की देवी देवताओं को मनाने हेतु विवाह-गौना विभिन्न प्रकार के संस्कार हेतु जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी गतिविधियों को अपने पूर्वजों की देंन को स्वीकारते हुए एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक हस्तांतरित करते रहते हैं। पनिका जनजाति के लोग बहुत ही सहज एवं सरल स्वभाव के होते हैं जो आपस में मिलजुल कर अपना व्यवहार को आदान-प्रदान करते रहते हैं।

धार्मिक स्थान लांघा टोला (पटना) गाँव से 15 किलो मीटर के अंतराल में धरहर (बहगड़) में गणेश मंदिर व पुरातत्व मंदिर स्थापित है जो हरे-भरे प्रकृति सुंदरता को बिखेरती है। लांघा टोला (पटना) गाँव से लगभग 45-46 किलो मीटर के दूरी में पवित्र संकुल अमरकंटक धाम के प्रकृति सुंदरता को देखा जा सकता है। अमरकंटक की सुंदरता हरे-भरे पेड़-पौधों से घिरे हुए दिखाई देता है, जहां से तीन नदियों का उद्गम हुआ है- प्रथम- नर्मदा नदी,

जिसको 'रेवा माँ' के नाम से भी जाना जाता है। जिसको रीवा के बघेल वंश से संबंधित महाराजा गुलाब सिंह मंदिर परिसर के बाहरी चारदीवारी का निर्माण करवाया था। द्वितीय- सोन नदी जो बहुत ही सुंदरता को निखारता है, एक बार देखने से मन बहुत ही आकर्षक होता है। तृतीय- जोहिला नदी जिसका उद्गम स्थान को 'ज्वालेश्वर धाम' के नाम से भी जाना जाता है। इसके साथ ही साथ नर्मदा नदी के बगल में विशाल पुरातत्व मंदिर अत्यंत प्राचीन है। इन तीनों नदियों के अलावा विभिन्न प्रकार के देखने घूमने के स्थान है। जैसे- कपिल धारा में कल-कल करती हुई ऊपर से गिरती हुई कपिल धारा, दूध धारा, दुर्गा धारा, माई की बगिया, सोन मूड़ा की कल-कल करती हुई गिरती सोन की धारा आदि नर्मदा तट में कई स्थान हैं। इसके अलावा कई आश्रम हैं। यह तीन पर्वत श्रृंखला-विंध्य, सतपुड़ा और मैकल पर्वत से घिरा हुआ है। अमरकंटक का सुंदर वर्णन है जो मैकल पर्वतमाला का यह सर्वाधिक ऊंचा पर्वत है, समुद्र सतह से 3250 फुट ऊंचा है तथा पर्वत उपत्यकाओं से 1100 फुट ऊंचा है। ऊपर 6 किलोमीटर पश्चिम-पूर्व तथा 2-3 किलोमीटर उत्तर-दक्षिण में फैला हल्की ढलान वाला पठार है जिसे 'टेबल टॉप' भी कहते हैं। संस्कृत वाङ्मय में जिसे 'आम्रकूट' पर्वत का वर्णन है वह यही पर्वतराज है। महाभारत में वन-पर्व में भी इस स्थान का उल्लेख है- बांस झुरमुट से स्वतः प्रवाहित क्षीर-नीर कण इस रूप में नर्मदा उद्गम का उल्लेख है वन-पर्व में *(राजनीकांत.2013)*। बुलंद पहाड़ियों और घने जंगलों के साथ-साथ छतीसगढ़ एवं मध्य-प्रदेश का बॉर्डर है, जो अमरकंटक देखने का पारिस्थितिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण जगह है।

पंचम- अध्याय

निष्कर्ष एवं सुजाव

भारत देश एक ऐसा देश है जो संस्कृति संपन्न रहा है। ग्रामीण अंचलों में लोक परंपरा की प्रबल धारा का वह रूप है जिसमें संस्कृति की प्रबलता झलकती है। विभिन्न तरह की जनजातियों वाला यह देश अपने में एकता संजोये हुये है जो अपने-अपने रीति-रिवाजों को हर्षोल्लास से मनाते आ रहे हैं। जिसमें हमें प्रत्यक्ष रूप से लोक परंपरा के गुण दिखाई पड़ते हैं। साथ ही साथ पारंपरिक रीतियों से अनुष्ठानों व संस्कारों का बड़ा ही महत्व है। इसके आंतरिक झलक सितारों की तरह झिल-मिलाती हुई दिखाई प्रतीत होता है। लोक परंपरा का अपना एक प्रबल पक्ष है जो मानव जीवन से कहीं भी अछूता नहीं है। वास्तविक रूप से अगर देखा जाए तो लोक परंपरा का अपना अस्तित्व हजारों वर्षों से है। फिर भी इनके स्वरूप, विधि-विधान व अभिव्यक्तियों के माध्यम कुछ तो वास्तविक रूप में तो कुछ अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते परिवेश में दिखाई प्रतीत होता है। यही इस बात की सबसे बड़ी प्रमाणिकता है कि लोक परंपरा का अस्तित्व आज भी कायम है। विभिन्न सांस्कृतिक अवसरों पर कलाकार उसे कलाकृति के द्वारा लय व ताल के द्वारा सामूहिक रूप से चरितार्थ करता है। इसी लोक परंपरा में एक सार्वभौमीकरण गुण है कि वह अपने में भूत, भविष्य और वर्तमान को संजोकर चलती है। इसी प्रवृति के माध्यम से भी अनेक युगों तक अपनी ऐतिहासिकता को बनाए रखती है। इसी को हम संस्कृति कहते हैं। लोक परंपरा स्थानीय ग्रामीण अंचलों में अपनी स्वरूप को बनाए हुये है जो उनकी सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम को भी परखा जा सकता है। लोक परंपरा के उन पहलुओं की ओर अगर हम अपनी दृष्टि डाले तो हमें उसके अतीत व वर्तमान दोनों का ज्ञान होता है जिस प्रकार हमारे जीवन के दो पक्ष हैं जैसे- आध्यात्मिक और सांस्कृतिक। उसी तरह से लोक कला के भी दो पक्ष हमारे समक्ष आते हैं, इनसे मिलकर बनी है लोक संस्कृति। लोक परंपरा एक परंपरागत यथार्थता संकेतों पर आधारित है। संस्कारों के माध्यम से सामाजिक रीति-रिवाजों एवं लोक गीतों के पारंपरिक

विधाओं से ही लोक जीवन की क्रमबद्धता का आभास होता है। लोक परंपरा स्वयं में व्यापकता लिए हुये है। इसमें जो शक्ति है उसमें आकर्षण भी है। वह कभी संकेत के रूप में, तो कभी लोक कथाओं के रूप में, तो कभी विभिन्न प्रकार के प्रचलित मान्यताओं के रूप में अभव्यक्ति होती है। सांस्कृतिक वस्तु-स्थिति यथार्थ रूप में मिलती है इसे आसानी से ग्रहण किया जा सकता है। इसलिए लोक परंपरा के अभिप्रायों में जो सौन्दर्यनुभूति है वह एकदम लोक परंपरा के आयामों को एक संकेत के रूप में प्रस्तुत करने का आकर्षण भी है। जब समय के गति के अनुसार हम ऐतिहासिक दृष्टि का मूल्यांकन करते हैं तो हमें विचार, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, आदर-भाव, हंसी-मज़ाक आदि से ज्ञान होता है। इसी से लोक जीवन का वास्तविक प्रतिनिधितत्व दृष्टिगोचर होता है। इनका स्वरूप को संस्कारों में भी देख सकते हैं जो लोक संस्कृति के वह पक्ष लोक कला के माध्यम से एक है। इसी में सारे संस्कृति समाहित होती है जो विभिन्न क्षेत्रों में अपने स्वरूप को भिन्नता लिए हुये दिखाई देता है ; लेकिन आकार में, प्रचलन में, रीति-रिवाज में एक है। इसका मुख्य कारण हमारे सांस्कृतिक चेतना है जो सदियों से हमें एक सूत्र में बांधे हुये हैं। जनजातियों के बीच लोक परंपरा के अभिप्रायों को देखने में ऐसा लगता है कि इनकी झलक निराली है।

इस तरह से मध्य-प्रदेश राज्य के अनूपपुर जिला में अनेक जनजातियाँ निवास करते हैं। जैसे- गोंड़, सहरिया, भरिया, बैगा एवं कोल आदि इसी तरह अनूपपुर जिला के पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में सघन रूप से पनिका जनजाति के लोग निवास करते हैं। इसके अलावा शहडोल, उमरिया, सिंगरौली आदि जिला में पनिका जनजातीय के लोग निवासरत हैं। जिसमें से अनूपपुर जिला के अमरकंटक से लेकर क्रमशः भुंडाकोना, पोड़की, लालपुर, मेढ़ाखार, पोंड़ी, भेजरी, डाकिया टोला, बसनिहा, राजेंद्रग्राम, लांघाटोला से लेकर अमलाई, चचाई, बुढ़ार, धनपुरी एवं शहडोल तक के बेल्ट में पनिका जनजाति के लोग निवासरत हैं। जो अपने पूर्वजों से चली आ रही लोक परंपरा को परंपरागत रूप से चित्रित करते हैं। लोक कलाकार अपने

अभव्यक्ति में बड़े ही मनोरम ढंग से आस्था रखता है। वह पूर्व प्रचलित अभिव्यक्तियों में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं करता। क्योंकि वह पूर्वजों से चली आ रही लोक परंपरा के आयामों को श्रद्धा एवं आस्था से ग्रहण करते हैं। यही आयाम लोक परंपरा में प्राण डालते हैं जिनसे लोक परंपरा का स्वरूप बनता है। ये आयाम विभिन्न अभिप्रायों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे- पारिवारिक परिवेश, रहन-सहन, क्रिया-कलाप सभी गतिविधियों के विभिन्न क्रियान्वयन से यहाँ के अभिप्रायों में एक प्रबल पक्ष समाहित है। लोक संस्कृति के यह धारा अपनी तीव्र गति से लोक प्रवाहित प्रचलित बदलते परिवेश में दिखाई देती है। इस तरह से कला प्रतिमानों का प्रस्फुटित होना सामूहिक विधि-विधान का उपज है जो सांस्कृतिक पक्ष को मुख्य आकारों में प्रदर्शित करता है। जनजातीय ग्रामीण अंचलों के बीच से गुजरने से माँदर, ढोल, मृदंग, टिमकी एवं बांसुरी आदि की आवाज जब सुनाई देती है, तब लोग झूम उठते हैं। विभिन्न कला अभिव्यक्तियों के माध्यम से जब पर्व-त्यौहार एवं उत्सव के समय आता है तो माँदर, ढोल, मृदंग एवं बांसुरी के साथ-साथ अनेक गीतों को युवक एवं युवतियों द्वारा गाई जाती है तब दो पक्षों में टोलियाँ थिरकते हुये दिखाई देती है। युवक और युवतियाँ विभिन्न प्रकार के गीत, गाथा, लोक कथा आदि के माध्यम से मनोरंजन करते हैं और अपने संस्कृति की झलक को दिखाते हैं। घरों पर प्राकृतिक वस्तुएं, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि के चित्र दिखाई देते हैं। घरेलू समान एवं सोने-बैठने के सामाग्री में जैसे- खटिया, मचिया, चटाई, झाड़ू, मिट्टी के बर्तन एवं लकड़ी के उपकरण इत्यादि उनके कारीगरी के परिणाम हैं। इस तरह से जनजाति संस्कृति के हर पहलुओं को समझने में सहायता होती है और जनजातीय संस्कृति को समृद्ध बनाती है तथा उनके जीवन में सरसता की धारा प्रवाहित करती रहती है।

लोक संस्कृति के क्षेत्र में लोक परंपरा के छवि को लोक परंपराकारों ने अपनी अप्रतिम दक्षता के साथ चित्रित किया है। लोक परंपरा तो वंशानुगत है इसी वंशानुगत के माध्यम से लोक कलाकारों ने अपनी परंपरा को साकार व सजीव बनाने में अपना विशिष्ट योगदान दिया करते हैं। लोक परंपरा के आयामों का सांस्कृतिक पक्ष से मूल्यांकन करने पर प्रायः देखा जाता

है कि लोक परंपरा के ये स्रोत हैं, जिनके माध्यम से लोक परंपरा का इतिहास बन जाता है। अगर इन आयामों का अंकन नहीं होता तो लोक परंपरा अपने अस्तित्व को प्राप्त नहीं होती। लोक परंपरा एक व्यावहारिक स्वरूप है जो हमारे दैनिक जन-जीवन से प्रभावित रहती है।

लोक परंपरा विभिन्न पर्वों, त्यौहारों, उत्सवों एवं संस्कारों पर विभिन्न आयामों के माध्यम से चित्रित किया जाता है। भारत एक विशाल देश है जहां अनेकों जनजातियों के लोग, संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं लेकिन इनके रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, आदि परिवर्तित होते रहते हैं। इन्हीं स्वरूपों में हमें कलात्मकता एवं भावनात्मक्ता दिखाई देती है। प्रकृति भी सदा परिवर्तनशील है। इसी परिवर्तन में ही सृजनात्मक गतिविधि निहित है। इसलिए विभिन्न पर्व, त्यौहार एवं संस्कारों आदि पर लोक परंपरा के माध्यम से नये-नये आयामों को अलंकृत करके प्रफुल्लित होता है जो उसकी चेतना का परिचायक है। लोक परंपरा के अंकन में जिन माध्यमों की आवश्यकता होती है उनमें वृद्ध महिलाएं प्रत्येक पर्व, त्यौहार, उत्सव में चाँवल के आंटा से, गेहूं के आंटा से चौंक पुरते हैं और गाय के गोबर से हाथ की उंगली व अंगूठा आदि से दीवालों को चित्रित किया करते हैं जो पारंपरिक प्रवृति के माध्यम से चित्रित किया जाता है। जिसमें लोक परंपरा के झलक जनजतियों के जन-जीवन में पनपती है। परंपरा के विभिन्न आयाम को मानव समूह, क्रिया-कलाप, मानवीय विचारों एवं परम्पराओं के आधार पर चित्रित किया जाता है। लोक शब्द हमारे जीवन का यथार्थ है जिसमें भूत, भविष्य एवं वर्तमान सभी कुछ समाहित है। लोक कलाएं एवं परम्पराएँ जनजातीय युवक युवतियों का आकर्षक हैं इनकी आस्था विभिन्न तरह के पर्व, त्यौहार, उत्सव एवं पूजा-अर्चना आदि में देखने को मिलती हैं। जैसे- बिदरी पूजा, हरियाली त्यौहार, तीजा त्यौहार, नांगपंचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, दशहरा आदि में मानवीय अभिव्यक्ति की एक क्रियान्वयन पद्धति को देखा जा सकता है। ग्रामीण अंचलों के रहने वाले जन-जीवन की दैनिक क्रियान्वयन को लोक पद्धति कहते हैं। इसलिए पर्वों, त्योहारों, उत्सवों एवं संस्कारों पर अंकित किए जाने वाले चित्र

लोक परंपरा के आयाम कहे जाते हैं। लोक परंपरा के आयाम को देखा जाए तो स्पष्ट दिखाई देता है कि सामाजिक नियम से जनजातियों के जीवन बंधी हुई है इसका स्थान दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू में आनंद और मनोरंजन का समावेश रहता है। इसी से उस क्षेत्र स्थान के सांस्कृतिक जीवन का पता चलता है कि आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, निवास स्थान, शिक्षा-दीक्षा, धर्म-कर्म, इन सब में मंगलकारी भावना निहित रहती है उस प्रवृति का स्त्रोत लोक परंपरा है।

इस प्रकार से जनजातीय संस्कृति में लोक परंपरा की अपनी प्रवाहमयी गति है जो सदैव अपनी स्वरूप को बनाए हुये रहती है। इसी तरह से लोक परंपरा किसी न किसी रूप में अपनी प्रबल धारा पर आधारित है। लोक परंपरा के उद्धेश्य को विभिन्न शुभ अवसरों पर जैसे- पर्व, त्यौहार, उत्सव और संस्कार एवं अनेक उपयोगी दृष्टिकोण से अभिव्यक्तियों का अंकन किया जाता है। लोक परंपरा का प्रतीक किसी विषय की अन्तः एवं बाह्य सत्य को प्रकट करती है जिसमें अन्तः एवं बाह्य अभिव्यक्तिओं के समावेश को व्यक्त करता है। मानव के चारो ओर का परिवेश समाज एवं संस्कृति से ओत-प्रोत है। इस स्थिति में मानव की भावना विभिन्न तरह की अभिव्यक्तियों के माध्यम से झलकती है।

जनजातियों के जनजीवन के लोक रहस्य संस्कृति को समझने के लिए उस जनजातीय समाज के रीति-रिवाज, परम्परा, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा, मान्यताएँ, विचार-भाव, विश्वास एवं कलात्मक अभव्यक्ति को वर्तमान में विभिन्न विद्वानों व शोधार्थियों को गहराई रूप से जानना आवश्यक होगा। इसी तरह से परंपरा की परिधि विभिन्न परिवेश में फैलती और सिकुड़ती रहती है। बदलते परिवेश में और नई आवश्यकताओं के दबाव के कारण परम्पराएँ अपना अनुकूल करती है। परंपरा पहले मनुष्य को संस्कार देती है, फिर वह सामूहिक स्वीकृति से संस्कृति का आभिजात्य अंग बन जाता है। परम्पराओं का बहुत बड़ा धारा व्यापक क्षेत्र है। पुरानी परम्पराएँ वर्तमान में भी जीवित रहती हैं और वर्तमान के लोक व्यवहार, नवाचार धीरे-धीरे परंपरा का रूप धारण कर लेते हैं। कुछ परंपरा प्रांसगितता के अभाव में छूटती चली जाती

है। किस परंपरा को स्वीकार करना है और किस परंपरा को छोड़ना है, इसका निर्णय समाज की सामूहिक स्वीकृति करती है। यह प्रक्रिया सांस की तरह हर समय में प्रवाहित होती रहती है।

इस प्रस्तुत शोध में अनूपपुर जिला के पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में पनिका जनजाति बहूल्य क्षेत्र है। इसके अलावा अमरकंटक से लेकर शहडोल तक पनिका जनजाति सघन रूप में निवास करती है। पनिका जनजाति मुख्यतः जंगलों, पहाड़ों, घाटियों, व नदी के किनारे के ग्रामों में अन्य जनजातियों एवं समुदायों के साथ जैसे- गोंड, बैगा, लोहार, अगरिया, पंडित, महरा, कोल आदि के साथ मध्य-प्रदेश में निवास करती है। जिसके लोक परंपरा की अध्ययन से यह पता चलता है कि पनिका जनजाति के लोग अपनी पूर्वजों के परम्पराओं को प्रचलित प्रवाहित धारा के ओर बदलते परिवेश में अग्रसर हैं जिसे पनिका जनजाति की धरोहर के नाम से भी जाना जा सकता है। वर्तमान समय में भी पनिका जनजातीय ग्राम में विभिन्न लोक संस्कृति के सोपान को विभिन्न प्रकार अभिव्यक्ति के माध्यम से परखा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के गीतों का समावेश जैसे- सुवा, शैला, करमा, ददरिया, ददरा, विवाह, विरहा एवं जस/देवी गीतों के विभिन्न लय ताल के अभव्यक्तियों के माध्यम से उनके प्रचलित संस्कृति से परिचित हुआ जा सकता है। इसी तरह से वर्ष में होने वाले व्रत, त्यौहार, पर्व एवं संस्कारों के झलक पनिका जनजाति के समाज की विशिष्ट अंग हैं। ऋतुओं के परिवर्तन के साथ अनेक व्रत और त्यौहार जुड़े हुये हैं। अधिकांश त्यौहार ऋतु के अनुकूल होते हैं। जैसे- बिदरी पूजा, हरियाली त्यौहार, तीज त्यौहार, दीपावली, छेर-छेरा, होली आदि हैं जिसे पारंपरिक तरीके से मनाते चले आ रहें हैं जो अपने संस्कृति के प्रचलित धाराओं के नियम में बंधे हुये हैं और कुछ बदलते परिवेश में दिखाई प्रतीत होते हैं जिसे संरक्षित कर रखना चाहिए क्योंकि आने वाले समय में अपने नए पीढ़ी को बता सकें एवं प्रत्यक्ष रूप से प्रादर्शों को दिखा सकें।

इस तरह से रीति-रिवाज यह एक प्रथा है जो परंपरा को निभाने की निरंतर क्रिया को ही रीति कहतें हैं। रीति-रिवाज सामूहिक रूप से स्वीकृति होती है। पारंपरिक कार्य के पूर्ति में जिस विधि का उपयोग करते हैं। जन्म से लेकर विवाह और मृत्यु तक के संस्कारों के निर्वाह में कई

प्रकार के रीति-रिवाज देखने के लिए मिलता है । पर्व-त्यौहार में भी विभिन्न प्रकार से अनुष्ठानिक रीति-रिवाज में पूजा-पाठ, अतिथि सत्कार के विभिन्न प्रचलित प्रवाहित तौर-तरीके से रीति-रिवाज को किया करते हैं जिसको विद्वानों और शोधार्थियों को गहन रूप से इनके संस्कृति के विभिन्न सोपानों को अध्ययन कर लिपिबद्ध कर संरक्षित करना चाहिए। जिसे आने वाले नये पीढ़ी को स्पष्ट रूप में उनकी मूल धरोहर से परिचित कराया जा सके।

जनजातीय समाज के सदस्यों का धार्मिक विश्वास जंगल में पाए जाने वाले पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षी पर आधारित है। पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षियों के साथ उनका टोटम संबंध है। उन्हें वे पवित्र मानते हैं जनजातीय विश्वास के अनुसार देवी-देवताओं का वास स्थल घने पेड़-पौधे के पास स्थित होता है। सरना स्थल को जनजातीय समाज के सदस्य श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। पर्व-त्यौहार के अवसर पर अपने देवी-देवताओं की स्थान में अनुष्ठानिक गतिविधियों को करते हैं। जनजातीय समाज आज तक अपनी संस्कृति के आधार पर ही अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुये हैं। अपनी रीति-रिवाज, परंपरा, प्रथा, कानून, विश्वास, नृत्य, संगीत एवं कला रही है। यही कारण है कि उनकी संस्कृति गैर-जनजातियों से भिन्न रही है। लोक परंपरा स्वीकृत समाज के द्वारा संचयी विरासत है, जो सांस्कृतिक परम्पराओं को भी आधुनिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। सामाजिक मूल व्यवस्था, सामाजिक संरचना तथा व्यक्तिगत संरचना में व्याप्त होती है। वर्तमान समय में जनजातियों के समाजों एवं संस्कृतियों में परिवर्तन की दिशा आधुनिकता की ओर अग्रसर हुई है। जनजातीय समाज में परम्पराएँ एवं आधुनिकता की धाराएँ साथ-साथ प्रवाहित होती दिखती है। सामाजिक परिवर्तन में परम्पराओं की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अनेक सांस्कृतिक तथ्य अतीत से हस्तांतरित होते चले आते हैं व वर्तमान तथ्यों पर प्रभाव डालते हैं। वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा पश्चमीकरण का समय चल रहा है और समाज के मापदंड इन चीजों से पूर्णतः प्रभावित हो रहें हैं। पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण आदि को अपनाते जा रहें हैं परंतु लोक परम्पराओं के विभिन्न स्वरूपों तथा श्रेणियों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि लोक परंपरा में मानवशास्त्रीय व्यवहार में 'लोक परंपरा' शब्द के विभिन्न तरह से अर्थ का प्रयोग किया जाता

रहा है। जैसे- पर्व, त्यौहार, उत्सव और संस्कार अन्य प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होता रहता है। इनकी लोक परम्परा इनकी संस्कृति से जुड़ी होती है परंतु इस लोक परंपरा पर लिखित प्रमाणों के अभाव है। जिसे मानवविज्ञान के विद्वानों एवं शोधार्थियों को गहन रूप से अध्ययन करना चाहिए और उनकी मूल प्रादर्शों को एकत्रित कर एक संग्रहालय में रखना चाहिए। जो आने वाले समय में नए पीढ़ी के लिए एक पारंपरिक प्रमाण होगा। साथ ही साथ उनके संस्कृति के विभिन्न सोपानों को लिपिबद्ध के माध्यम से संरक्षित किया जाना चाहिए है।